THE ALTIORA
An International Quarterly Peer-Reviewed / Refereed Journal of Multidisciplinary Research

प्रेमचंद के उपन्यासों में कृषक जीवन और भू-स्वामित्व का संकट: वर्तमान कृषि परिदृश्य के संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन

स्वाती पाण्डेय
बी०ए० द्वितीय वर्ष,प्रो० रज्जू भैया राज्य विश्वविद्यालय,प्रयागराज

Article Info

ISSN: 3140-0515
Volume: 01
Issue: 02
July-September 2026
Received: 07-09-2026
Accepted: 0709-2026
Page No: 84-90

शोध-सार

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य के ऐसे युगद्दष्टा रचनाकार हैं जिन्होंने भारतीय कृषक को केवल साहित्य की विषय-वस्तु नहीं बनाया, बल्कि उसकी संपूर्ण सामाजिक-आर्थिक त्रासदी, भू-स्वामित्व के संकट और वर्ग-शोषण को यथार्थवादी दृष्टि से उद्घाटित किया। 'गोदान', 'प्रेमाश्रम', और 'कर्मभूमि' जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने औपनिवेशिक सामंती व्यवस्था के अंतर्गत महाजनी सभ्यता, ज़मींदारी शोषण और राज्य के प्रशासनिक तंत्र द्वारा किसान के क्रमिक सर्वहाराकरण (Proletarianization) का जो दस्तावेज़ीकरण किया था, वह आज भी विस्मयकारी रूप से प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध पत्र प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन और भू-स्वामित्व के संकट का इक्कीसवीं सदी के समकालीन कृषि परिदृश्य के संदर्भ में एक गहन तुलनात्मक और समाजशास्त्रीय पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। अध्ययन यह रेखांकित करता है कि प्रेमचंद के दौर में किसान का जो संघर्ष सामंती ज़मींदार, पटवारी और सूदखोर महाजन के विरुद्ध था, वह आज नवउदारवादी दौर में बहुराष्ट्रीय कृषि-व्यापारिक निगमों (Agribusiness Corporates), रासायनिक इनपुट लागतों, अनौपचारिक सूक्ष्म-ऋणों और बाज़ार के अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव में रूपांतरित हो चुका है। 'गोदान' का होरी केवल 1936 का एक पात्र नहीं है, बल्कि वह वर्तमान भारत के उस छोटे और सीमांत किसान का अमर प्रतीक है जो आनुवंशिक रूप से ऋणग्रस्त है और अपनी ज़मीन को अपनी अस्मिता मानते हुए भी अंततः उसे खोने के कगार पर खड़ा है। यह शोध पत्र ऐतिहासिक-तुलनात्मक और समाजशास्त्रीय पद्धति का उपयोग करते हुए यह स्थापित करता है कि औपनिवेशिक सामंतवाद से कॉर्पोरेट पूंजीवाद की ओर संक्रमण के बावजूद भारतीय किसान की मूलभूत संरचनात्मक नियति—'ज़मीन से बेदखली और अस्तित्व का संकट'—यथावत बनी हुई है। अंततः, आलेख प्रेमचंद के नैतिक यथार्थवाद और किसान-केंद्रित चेतना के आलोक में समकालीन कृषि संकट के नीतिगत समाधानों की दिशा में नए विमर्श के बिंदु प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द: ***प्रेमचंद, गोदान, कृषक जीवन, भू-स्वामित्व का संकट, महाजनी सभ्यता, नवउदारवाद, समकालीन कृषि संकट, किसान आत्महत्याएं, कॉर्पोरेट कृषि।***

1. प्रस्तावना:

प्रेमचंद का यथार्थवाद और भारतीय कृषक चेतना आधुनिक भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद का स्थान एक ऐसे अप्रतिम यथार्थवादी कथाकार के रूप में निर्विवाद है, जिन्होंने साहित्य को दरबारों, तिलिस्म और ऐय्यारी के घटाटोप से निकालकर गांव की कच्ची पगडंडियों, पसीने से भीगी धरती और खेत की मेड़ों पर लाकर खड़ा किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंद ने साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ा था—'साहित्य केवल मनोरंजन की सामग्री नहीं है, वह जीवन की सच्चाई का आईना है, सत्य का अन्वेषण है।' प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य का केंद्रीय धुरा भारतीय किसान है। उन्होंने भारतीय गांव को किसी रोमैंटिक कल्पना के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे शोषण, अभाव, जातिगत उत्पीड़न और आर्थिक दासता के एक जटिल अखाड़े के रूप में चित्रित किया।

प्रेमचंद के समय भारतीय कृषि औपनिवेशिक ब्रिटिश साम्राज्यवाद और देशी सामंतवाद के दोहरे पाटों के बीच पिस रही थी। ब्रिटिश राज द्वारा थोपी गई स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement), रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्थाओं ने ज़मीन को एक क्रय-विक्रय की वस्तु (Commodity) बना दिया था, जिसके चलते किसान अपनी ही पुरखौती ज़मीन पर बंधुआ या असहाय काश्तकार बनकर रह गया था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों—विशेषकर 'प्रेमाश्रम' (1922), 'कर्मभूमि' (1932) और अपने कालजयी महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' (1936)—के माध्यम से इस संरचनात्मक संकट की जो चीरफाड़ की, वह आज भी समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के लिए एक अद्वितीय दस्तावेज़ है।

आज, आज़ादी के सात दशकों से अधिक समय बाद और 1991 के बाद लागू की गई नवउदारवादी, बाज़ार-उन्मुख आर्थिक नीतियों के दौर में, जब हम भारतीय कृषि की ओर देखते हैं, तो एक भयावह समानता उभरकर सामने आती है। ज़मींदारी उन्मूलन और हरित क्रांति के दौर से गुजरने के बाद भी क्या भारतीय किसान उस संकट से मुक्त हो सका है जिसकी चेतावनी प्रेमचंद ने दी थी? आज का किसान भी उसी प्रकार लागत के बोझ, गिरते भू-स्वामित्व, कर्ज़ के दलदल और अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र प्रेमचंद के औपन्यासिक विमर्श के समानांतर वर्तमान कृषि परिदृश्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए भू-स्वामित्व के बदलते स्वरूप और कृषक जीवन की त्रासदी का समाजशास्त्रीय पुनर्मूल्यांकन करता है।

2. औपनिवेशिक सामंती व्यवस्था और भू-स्वामित्व का ढांचा: प्रेमचंद के उपन्यासों का पाठ

क. ज़मीन: अस्मिता, मर्यादा और आजीविका का त्रिकोण

प्रेमचंद के साहित्य में भूमि (ज़मीन) केवल उत्पादन का भौतिक साधन (Factor of Production) नहीं है; वह किसान के लिए उसकी मर्यादा, उसका स्वाभिमान और उसकी सामाजिक अस्मिता है। 'गोदान' में होरी अपनी ज़मीन के प्रति जो अगाध निष्ठा रखता है, वह केवल आर्थिक लाभ-हानि का गणित नहीं है। होरी के लिए पांच बीघे ज़मीन का टुकड़ा उसकी पूर्वजों की धरोहर और समाज में उसकी प्रतिष्ठा का प्रतीक है। जब भोला, पटवारी या ज़मींदार के कारिंदे होरी पर दबाव बनाते हैं, तो वह भूखा रहकर, अपनी देह को गलाकर भी लगान चुकाने की चेष्टा करता है, ताकि ज़मीन उसके हाथ से न निकले।

'गोदान' में प्रेमचंद लिखते हैं—'किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं... पर उसकी मर्यादा उसकी ज़मीन है।' ज़मीन छिन जाने का अर्थ किसान के लिए केवल बेरोज़गार होना नहीं है, बल्कि 'किसान' से 'मज़दूर' के अपमानजनक स्तर पर गिरना है। प्रेमचंद ने दिखाया कि किस प्रकार औपनिवेशिक कानून और भू-राजस्व प्रणाली ने किसान की इस भावनात्मक और सामाजिक मर्यादा को उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी में बदल दिया, जिसका लाभ उठाकर सामंती ताकतों ने उसका रक्त चूसा।

ख. औपनिवेशिक-सामंती गठजोड़: ज़मींदार, पटवारी और पुलिस की त्रिमूर्ति

'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में प्रेमचंद ने ग्रामीण सत्ता-संरचना के उस त्रिकोणीय गठजोड़ का पर्दाफाश किया जो किसान को चारों तरफ से घेरकर रखता था। इस व्यवस्था के शीर्ष पर ज़मींदार (जैसे 'गोदान' में रायसाहब अमरपाल सिंह और 'प्रेमाश्रम' में प्रभाशंकर/ज्ञानशंकर) विराजमान थे। रायसाहब स्वयं को उदार, साहित्य-प्रेमी और देशभक्त राष्ट्रवादी प्रदर्शित करते हैं, काउंसिल के चुनाव लड़ते हैं, किंतु जब अपने गांव बेलारी और सेमरी

में लगान वसूलने की बात आती है, तो उनके कारिंदे नोखेराम और पटवारी लाला पटेश्वरी किसानों पर तनिक भी दया नहीं दिखाते।

यह औपनिवेशिक राज्य व्यवस्था का अत्यंत धूर्त तंत्र था—ज़मींदार अंग्रेजों को निश्चित मालगुज़ारी देता था और स्वयं किसानों से मनमाना लगान, बेगार और नज़राना वसूलता था। यदि कोई किसान इसका विरोध करे, तो पटवारी कागज़ात में हेरफेर करके उसकी ज़मीन बेदखल कर देता था और दारोगा (पुलिस) डंडे के ज़ोर पर ज़मींदार की सत्ता को स्थापित करता था। 'प्रेमाश्रम' में मनोहर और बलराज का प्रतिरोध इसी संस्थागत अन्याय के विरुद्ध फूटा था। प्रेमचंद ने स्पष्ट दिखाया कि कानून, कचहरी और पुलिस न्याय के साधन नहीं, बल्कि शोषक वर्ग के हथियार थे।

3. 'महाजनी सभ्यता' और किसान का क्रमिक सर्वहाराकरण

क. कर्ज़ का दुष्चक्र: जन्म से मृत्यु तक गिरवी जीवन

प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'महाजनी सभ्यता' और उपन्यासों में जिस पूंजीवादी-साहूकारी मानसिकता का विश्लेषण किया, वह कृषक त्रासदी की मूल जड़ थी। 'गोदान' का संपूर्ण आख्यान वास्तव में ऋण (कर्ज़) के जाल में एक किसान के तिल-तिल कर मरने की गाथा है। होरी पर मंगरू साह का कर्ज़ है, दुलारी सहुआइन का ब्याज चढ़ रहा है, झिंगुरी सिंह की सवाई-ड्योढ़ी बाकी है और पंडित दातादीन का लगान बकाया है। होरी एक कर्ज़ चुकाने के लिए दूसरा कर्ज़ लेता है। कर्ज़ का यह ब्याज कभी मूल से कम नहीं होता।

प्रेमचंद ने तत्कालीन कृषि अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी विडंबना को रेखांकित किया था—किसान जन्म लेता है कर्ज़ में, जीता है कर्ज़ में और अपनी अगली पीढ़ी को कर्ज़ ही विरासत में देकर मर जाता है। होरी का पुत्र गोबर जब शहर भाग जाता है और होरी अंततः अपनी ज़मीन बचाने में असमर्थ हो जाता है, तो उसे सड़क पर मजदूरी करनी पड़ती है। लू लगने से जब होरी की मृत्यु होती है, तो उसके घर में कफ़न के लिए पैसे नहीं होते और धनिया की हथेली पर दातादीन 'गौ-दान' के नाम पर अंतिम बीस आने की मांग करता है। यह दृश्य भारतीय साहित्य में किसान के संपूर्ण सर्वहाराकरण (Proletarianization) का चरम बिंदु है।

ख. सांस्कृतिक पाखंड और धार्मिक शोषण

प्रेमचंद की सूक्ष्म दृष्टि से यह तथ्य ओझल नहीं रहा कि आर्थिक शोषण को सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था द्वारा वैधता प्रदान की जाती है। 'गोदान' में पंडित मातादीन और दातादीन केवल पुरोहित नहीं हैं, वे क्रूर सूदखोर भी हैं। जब होरी के घर में गाय की मृत्यु होती है या जब धनिया-गोबर के प्रसंग में समाज में 'पंचायत' बैठती है, तो धर्म के ठेकेदार किसान पर भारी आर्थिक दंड (प्रायश्चित और दंड) थोपते हैं। यह दंड अंततः किसान की ज़मीन और उसके मवेशियों को महाजन के पास गिरवी रखवा देता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि धर्म और जाति का पाखंड पूंजीवादी-सामंती शोषण का सबसे प्रभावी सह-अपराधी है।

4. समकालीन कृषि परिदृश्य: नवउदारवाद, वैश्वीकरण और नया कृषि संकट

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में ज़मींदारी उन्मूलन कानून पारित हुए और हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की गई। किंतु 1991 के बाद अपनाई गई नई आर्थिक नीतियों (LPG: उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण) ने भारतीय कृषि को पुनः एक अभूतपूर्व संरचनात्मक संकट के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है। आज के परिदृश्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि शोषण का चेहरा बदला है, उसकी आत्मा नहीं बदली:

क. भू-स्वामित्व का विखंडन: जोतों का घटता आकार और सीमांतीकरण

वर्तमान कृषि जनगणना के अनुसार, भारत में कुल क्रियाशील जोतों का 86 प्रतिशत से अधिक हिस्सा छोटे और सीमांत किसानों (2 हेक्टेयर से कम ज़मीन वाले) के पास है। औसतन एक कृषक परिवार के पास एक हेक्टेयर से भी कम भूमि रह गई है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज़मीन के बंटवारे ने खेतों को इतना छोटा कर दिया है कि वे केवल जीवन-निर्वाह (Subsistence Farming) का साधन भी नहीं रह गए हैं। प्रेमचंद के होरी के पास कम से कम पांच बीघे ज़मीन थी, किंतु आज के करोड़ों किसानों के पास एक या दो बीघे ज़मीन है, जिस पर खेती करना आर्थिक रूप से घाटे का सौदा बन चुका है।

ख. लागत का विस्फोट बनाम अनिश्चित बाज़ार

प्रेमचंद के दौर में किसान का मुख्य खर्च लगान और महाजन का ब्याज था; उसके पास अपने देसी बीज थे,

खाद के लिए पशुधन (गोबर) था और पारिवारिक श्रम था। किंतु आधुनिक कृषि पूरी तरह से बाज़ार पर निर्भर हो चुकी है। संकर और जीएम (BT) बीज, रासायनिक खादें (यूरिया, डीएपी), कीटनाशक, बोरवेल और डीजल/बिजली की लागत ने उत्पादन लागत (Cost of Cultivation) को अत्यधिक बढ़ा दिया है।

लागत के इस विस्फोट के अनुपात में किसान को उसकी उपज का लाभकारी मूल्य (MSP) नहीं मिलता। स्वामीनाथन आयोग (National Commission on Farmers) की सिफारिश (C2+50% लागत आधारित मूल्य) आज भी पूर्ण रूप से लागू नहीं हो सकी है। परिणामस्वरूप, किसान बाज़ार से अत्यधिक महंगी इनपुट सामग्री खरीदता है और अपनी फसल औने-पौने दाम पर व्यापारियों को बेचने पर मजबूर होता है।

ग. आधुनिक महाजनी सभ्यता: संस्थागत ऋण का अभाव और किसान आत्महत्याएं

आज के दौर में झिंगुरी सिंह और मंगरू साह की जगह किसने ली है? यद्यपि ग्रामीण बैंकों और प्राथमिक कृषि साख समितियों (PACS) का संजाल फैला है, किंतु छोटे और पट्टेदार किसानों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से समय पर पर्याप्त ऋण नहीं मिलता। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) और कृषि अध्ययनों के आंकड़े गवाही देते हैं कि पिछले तीन दशकों में चार लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्या की है। आत्महत्या करने वाले अधिकांश किसान विदर्भ, मराठवाड़ा, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और पंजाब के वे कपास और नकदी फसल उगाने वाले किसान हैं जो निजी बीज-खाद विक्रेताओं, अनौपचारिक साहूकारों और माइक्रोफाइनेंस कंपनियों के अत्यधिक ब्याज वाले कर्ज़ के जाल में फंस गए।

प्रेमचंद का होरी अंत में खेत में गिरकर मर गया था क्योंकि उसकी देह जवाब दे गई थी; आज का होरी कीटनाशक पीकर या फांसी के फंदे पर लटककर जान दे रहा है क्योंकि बाज़ार और कर्ज़ के दबाव ने उससे जीने की न्यूनतम मानवीय गरिमा भी छीन ली है।

5. तुलनात्मक विश्लेषण: औपनिवेशिक सामंतवाद बनाम कॉर्पोरेट पूंजीवाद

प्रेमचंद के औपन्यासिक परिदृश्य और इक्कीसवीं सदी के वर्तमान कृषि यथार्थ के बीच तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि शोषण के स्वरूप में परिवर्तन अवश्य आया है, किंतु उसकी मूल संरचना आज भी अनेक स्तरों पर विद्यमान है। प्रेमचंद के समय किसान का प्रत्यक्ष शोषण सामंती ज़मींदारों, लंबरदारों, पटवारियों और ग्रामीण सूदखोर महाजनों द्वारा किया जाता था। 'गोदान' में रायसाहब, पटेश्वरी जैसे पात्र तथा मंगरू और झिंगुरी सिंह जैसे महाजन ग्रामीण कृषक जीवन में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक शोषण की व्यवस्था को सामने लाते हैं। इसके विपरीत समकालीन कृषि व्यवस्था में शोषण का स्वरूप अधिक अप्रत्यक्ष, संस्थागत और वैश्वीकरण से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। बहुराष्ट्रीय बीज एवं कृषि-रसायन कंपनियाँ, बड़े कॉर्पोरेट कृषि-व्यवसाय समूह, वैश्विक कृषि-वस्तु बाजार तथा निजी सूक्ष्म-वित्तीय संस्थाएँ किसान की उत्पादन लागत, ऋण, बाजार और आय को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण शक्तियों के रूप में सामने आई हैं। इस प्रकार प्रेमचंद के समय का प्रत्यक्ष सामंती शोषण आज बाजार, पूँजी और संस्थागत व्यवस्थाओं के माध्यम से अधिक जटिल रूप ग्रहण कर चुका है।

भू-स्वामित्व और बेदखली के प्रश्न पर भी दोनों कालखंडों में महत्वपूर्ण समानताएँ और अंतर दिखाई देते हैं। प्रेमचंद के समय लगान न चुका पाने की स्थिति में किसान को ज़मींदार की ओर से बेदखली का सामना करना पड़ता था और आर्थिक संकट के कारण उसकी भूमि महाजन के पास बंधक हो जाती थी। भूमि केवल उत्पादन का साधन नहीं थी, बल्कि किसान की सामाजिक प्रतिष्ठा और जीवन-निर्वाह का आधार भी थी। समकालीन भारत में भूमि से विस्थापन के कारणों का स्वरूप बदल गया है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों, औद्योगिक परियोजनाओं, औद्योगिक गलियारों, खनन परियोजनाओं तथा अनियोजित शहरीकरण के कारण भूमि अधिग्रहण की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। दूसरी ओर, कृषि की बढ़ती लागत, ऋणग्रस्तता और खेती की अपर्याप्त आय के कारण कुछ किसान अपनी भूमि बेचने के लिए भी विवश होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में ग्रामीण किसान का शहरों की ओर पलायन और निर्माण अथवा अन्य असंगठित क्षेत्रों में मजदूर के रूप में काम करना समकालीन कृषि संकट की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति बन गया है।

राज्य की भूमिका के संदर्भ में प्रेमचंद के समय और वर्तमान समय के बीच स्पष्ट अंतर दिखाई देता है, यद्यपि किसान और राज्य के संबंधों में तनाव के कुछ तत्व दोनों

कालखंडों में देखे जा सकते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में औपनिवेशिक शासन का स्वरूप मुख्यतः राजस्व वसूली, प्रशासनिक नियंत्रण और कानून-व्यवस्था की औपनिवेशिक प्राथमिकताओं से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। किसान के लिए राज्य प्रायः ऐसी सत्ता के रूप में उपस्थित होता है, जिसके सामने उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति अत्यंत कमजोर होती है। समकालीन भारत में राज्य का संवैधानिक स्वरूप कल्याणकारी है और कृषि क्षेत्र के लिए विभिन्न योजनाएँ, न्यूनतम समर्थन मूल्य, ऋण-सुविधाएँ, बीमा, प्रत्यक्ष आय सहायता तथा अन्य कल्याणकारी उपाय संचालित किए जाते हैं। इसके बावजूद कृषि क्षेत्र में बाजारोन्मुखी नीतियों, निजी निवेश, अनुबंध कृषि और कृषि-व्यवसाय के विस्तार को लेकर बहस बनी हुई है। इसलिए वर्तमान कृषि यथार्थ में राज्य की भूमिका को केवल शोषक या संरक्षक के एकांगी रूप में न देखकर कल्याण, विनियमन, बाजार और किसान हितों के बीच संतुलन स्थापित करने वाली जटिल भूमिका के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा।

प्रतिरोध और कृषक चेतना के स्तर पर भी प्रेमचंद के साहित्य और समकालीन भारत के बीच महत्वपूर्ण संबंध दिखाई देता है। 'प्रेमाश्रम' में मनोहर और बलराज जैसे पात्र कृषक असंतोष और प्रतिरोध की चेतना को अभिव्यक्त करते हैं तथा किसान सभाओं और गांधीवादी आंदोलनों की उभरती हुई पृष्ठभूमि उस समय के ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना के विकास को रेखांकित करती है। समकालीन समय में किसानों के प्रतिरोध ने व्यापक संगठित और लोकतांत्रिक स्वरूप ग्रहण किया है। वर्ष 2020–21 में तीन केंद्रीय कृषि कानूनों के विरोध में दिल्ली की सीमाओं पर हुआ किसान आंदोलन लंबे समय तक चला और अंततः केंद्र सरकार ने नवंबर 2021 में तीनों कृषि कानूनों को निरस्त करने की घोषणा की। इस आंदोलन में किसानों की सामूहिक लामबंदी, संगठनात्मक क्षमता और नीति-निर्माण पर प्रभाव डालने की क्षमता स्पष्ट रूप से सामने आई। इस दृष्टि से प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में दिखाई देने वाली कृषक एकता और प्रतिरोध की चेतना को समकालीन किसान आंदोलनों के संदर्भ में एक व्यापक ऐतिहासिक-सामाजिक निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है, यद्यपि दोनों कालखंडों की राजनीतिक, आर्थिक और संस्थागत परिस्थितियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

6. प्रेमचंद की दृष्टि में समाधान और आज के नीतिगत सबक

प्रेमचंद केवल एक समस्या-चित्रक लेखक नहीं थे; वे समाधान-उन्मुख चिंतक भी थे। हालांकि गांधीवादी प्रभाव के कारण 'प्रेमाश्रम' के अंत में उन्होंने ज़मींदार लखनसिंह के हृदय-परिवर्तन का आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया था, किंतु अपने अंतिम दौर तक आते-आते ('गोदान' और कफ़न) उनका यह भ्रम टूट चुका था। वे समझ चुके थे कि व्यवस्थागत शोषण का समाधान हृदय-परिवर्तन से नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक ढांचे के आमूलचूल रूपांतरण से ही संभव है।

वर्तमान कृषि संकट के समाधान हेतु प्रेमचंद के साहित्य और विचारों से निम्नलिखित नीतिगत दिशाएं प्राप्त होती हैं:

1. ज़मीन का मालिकाना हक़ और पट्टा सुरक्षा:

भूमिहीन कृषि मजदूरों और बटाईदारों (Sharecroppers) को कानूनी मान्यता और पट्टा सुरक्षा मिलनी चाहिए, ताकि वे सरकारी योजनाओं और संस्थागत ऋण के दायरे में आ सकें।

2. लागत-आधारित लाभकारी मूल्य (C2+50% MSP की कानूनी गारंटी):

जैसे प्रेमचंद ने लगान की दर को नियंत्रित करने और किसान को उसकी मेहनत का उचित फल देने की वकालत की थी, उसी प्रकार आज सभी प्रमुख फसलों पर न्यूनतम समर्थन मूल्य की वैधानिक गारंटी अत्यंत आवश्यक है।

3. सहकारिता और सामूहिक खेती का पुनरुद्धार:

छोटे और सीमांत किसानों के भूमि विखंडन के समाधान हेतु किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) और सहकारी खेती को सुदृढ़ करना, ताकि वे कॉर्पोरेट बाज़ार की सौदेबाज़ी के सामने टिक सकें।

4. कृषि इनपुट का गैर-कॉर्पोरेटीकरण:

रासायनिक खादों और महंगे बीजों पर निर्भरता घटाकर स्वदेशी कृषि ज्ञान, प्राकृतिक खेती और सामुदायिक बीज बैंकों को प्रोत्साहन देना, जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो सके।

7. निष्कर्ष: होरी की अमर नियति और हमारा समय

'गोदान' का प्रकाशन 1936 में हुआ था। आज लगभग एक शताब्दी बीत जाने के बाद भी भारतीय कृषि का संकट समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि उसने नए और अधिक

जटिल रूप धारण कर लिए हैं। औपनिवेशिक भारत का ज़मींदार आज के बहुराष्ट्रीय कृषि निगम में बदल चुका है, गांव का महाजन आज के निजी इनपुट डीलर और माइक्रोफाइनेंस एजेंट में तब्दील हो चुका है, और पटवारी का उत्पीड़न आज भूमि अधिग्रहण के जटिल कानूनी तंत्र में बदल चुका है।

प्रेमचंद का होरी आज भी हमारे बीच मौजूद है। वह बुंदेलखंड के सूखे खेतों में आसमान की ओर ताकता हुआ खड़ा है; वह विदर्भ के कपास के खेतों में कर्ज़ से दबा हुआ बैठा है; और वह दिल्ली की सीमाओं पर अपनी ज़मीन और आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व को बचाने के लिए कड़कड़ाती ठंड में संघर्ष कर रहा है। प्रेमचंद का साहित्य हमें यह स्मरण कराता है कि जब तक देश का अन्नदाता अपनी ही ज़मीन पर पराएपन और भूख का शिकार रहेगा, तब तक किसी भी राष्ट्र का विकास अधूरा, खोखला और अनैतिक है। प्रेमचंद का कृषक विमर्श कोई बीती हुई दास्तान नहीं, बल्कि इक्कीसवीं सदी के भारत का सबसे ज्वलंत और असुविधाजनक आईना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद. (1936). गोदान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन (पुनर्मुद्रण 2018).
2. प्रेमचंद. (1922). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन (पुनर्मुद्रण 2015).
3. प्रेमचंद. (1932). कर्मभूमि. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन (पुनर्मुद्रण 2012).
4. प्रेमचंद. (1936). महाजनी सभ्यता (निबंध संग्रह, संपा. अमृतराय). नई दिल्ली: पीपल्स पब्लिशिंग हाउस.
5. शर्मा, रामविलास. (1976). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
6. राय, अमृत. (1962). प्रेमचंद: क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन.
7. सिंह, नामवर. (1982). प्रेमचंद और भारतीय किसान. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
8. मैनेजर पांडेय. (1993). साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
9. भादुड़ी, अमित. (1984). द इकोनॉमिक स्ट्रक्चर ऑफ बैकवर्ड एग्रीकल्चर. मैकमिलन.
10. पटनायक, उत्सव. (2007). द रिपब्लिक ऑफ हंगर एंड अदर एसेज. मर्लिन प्रेस.
11. साईनाथ, पी. (1996). एवरीबडी लव्स अ गुड ड्रॉट: स्टोरीज फ्रॉम इंडियाज़ पूअरेस्ट डिस्ट्रिक्ट्स. पेंगुइन बुक्स.
12. स्वामीनाथन, एम. एस. (2006). सर्विंग फार्मर्स एंड सेविंग फार्मिंग: फिफ्थ एंड फाइनल रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन फार्मर्स. नई दिल्ली: कृषि मंत्रालय, भारत सरकार.
13. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार. (2019). ऑल इंडिया रिपोर्ट ऑन एग्रीकल्चर सेंसस 2015–16. नई दिल्ली: कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय.
14. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी). (2022). एक्सीडेंटल डेथ्स एंड सुसाइड्स इन इंडिया (एडीएसआई) रिपोर्ट. नई दिल्ली: गृह मंत्रालय.
15. जोशी, पी. सी. (1975). लैंड रिफॉर्म्स इन इंडिया: ट्रेंड्स एंड पर्सपेक्टिव्स. एलाइड पब्लिशर्स.
16. शुकुल, वीरेंद्र. (2010). प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ. दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स.
17. तिवारी, रामचंद्र. (2016). हिंदी गद्य साहित्य (परिवर्धित संस्करण). वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

18. वासुदेव, उमा. (2014). गोदान का समाजशास्त्र. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन.

19. सेन, अमर्त्य. (1981). पॉवर्टी एंड फैमिन्स: एन एसे ऑन एंटाइटलमेंट एंड डिप्राइवेशन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

20. देसाई, ए. आर. (1979). पीज़ेंट स्ट्रगल्स इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.